International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 476-478

भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य में युगबोध : एक अध्ययन

नीलम
एम.ए. हिन्दी (नैट), सैक्टर–2, हिसार, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

युग मनुष्य को मांजता है। ऐसा कोई युग नहीं जिसने साहित्यकार और उसकी चिन्तनधारा को प्रभावित न किया हो। हर युग की अपनी परिस्थितियां और घटनाक्रम होते हैं। विशिष्ट कालखंड, परिवेश एवं घटनाक्रम के आधार पर युग की निर्मिति होती है। कोई भी रचना तब साथर्क होती है जब वह अपनी जमीन, समय और समाज से पूरी तरह जुड़ जाती है। अपनी मिट्टी की महक एवं जनजीवन का संगीत जिसमें गूंजता हो वही काव्य की सच्ची सार्थकता है।

भवानीप्रसाद मिश्र का काव अपने आसपास के सामाजिक जीवन की झांकियां, लोक तत्त्व आदि से रससिक्त हुआ है। उनका युगाबोध किसी छोटे दायरे की अंधी–संकरी गुफा की और हमें उन्मुख नहीं करता अपितु उनका हर तत्कालीन अनुभव जीवन के स्थायी मूल्यों को उभारने में सक्षम है। उनकी कविता सीधी–सरल भाषा में पाठकों के ह्रदय को स्पर्श करते चलती है। उनकी दृष्टि में कविता सहज अनुभूतियों का सम्प्रेषण है। उन्होंने कविता को जीवन, जगत् और मनुष्य से जोड़कर देखा है। वर्तमान जीवन विसंगतियों से भरा हुआ है। सत्य खोजने पर भी दिखाई नहीं देता। दूर–दूर तक झूठ का ही साम्राज स्थापित है। समस्याओं के अंबार लगे हैं किन्तु फिर भी हम समाधान नहीं चाहते। हम उत्तरदायित्व हीन हो गये हैं। क्योंकि समस्याओं का निराकरण करना हम अपना दायित्व ही नहीं समझते। अतः कवि अपने काव्य में केवल शब्दों का प्रयोग ही करना नहीं चाहता अपितु उन्हीं शब्दों के अर्थों में वह जीना और उन पर मरना चाहता है। मिश्रजी ने स्वयं लिखा है –

''मैं उन्हें सिर्फ बरतूं नहीं
उन्हें जिऊं/बात कठिन है
लेकिन करना चाहिए !
शब्दकार को/अगर जरुरत पड़े
तो अपने शब्दों पर / मरना चाहिए।''[1]

आत्मस्वीकृति तथा सत्यवादी दृष्टि मिश्रजी के काव्य की विशेषता रही है।

सन 1930 के आसपास का समय, भारतीय राजनीति के उथल–पुथल का काल था। इसी समय के लगभग 20 वर्ष मी उम्र में मिश्रजी की काव्य–याञा आरंभ हुई। भावुक, संवेदनशील कवि मानस राजनैतिक अस्थिरता के वातावरण को खुली आंखें से देखा–सह रहा था। स्वयं कर्मठ एवं स्वतंञता के पक्षधर होने की वजह से वे चुप नहीं बैठ सकें। मिश्रजी की आरंभिक छोटी–छोटी कविताओं से राष्ट्रीय चेतना और मानवतावादी भाव मुखरित होने लगे।

लोकतांञिक व्यवस्था में जीवन यापन करते हुए भी राजनीति की आड़ में जो गलत कार्य किये जा रहे थे कवि ने उन पर तीखा व्यंग्य किया है। कवि यह सकेंत देते हैं कि वर्तमान लोक नेता राजनीति के सहारे सम्पत्ति संग्रह में जुट गये है। भवानीप्रसाद जी अपने विद्यार्थी जीवन से ही राष्ट्रीय आन्दोलन में सहभागी होने लगे थे। कई राजनीतिक परिस्थितियां उन्हें प्रत्यक्ष –अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती रहीं, जिनकी उनके व्यक्तित्व पर अमिट छाप पड़ी। इन राजनीतिक गतिविधियों को उन्होंने समय–समय पर जनता के सामने प्रस्तु किया, जिससे जनता सचेत रहें सन् 1675, श्रीमती इदिरा गाधी के प्रशासन में आपातकाल लागू हुआ। आपातकाल की समस्याओं के भुक्तभोगी मिश्रजी ने आपातकाल की घाषेणा के मूल्य में प्रमुख भूमिका वहन करने वाली तत्कालीन प्रधानमञी श्रीमती इन्दिरा गाधी, राष्ट्रपति, कांग्रेस अध्यक्ष एवं संजय गांधी पर तीखा व्यंग्य करते हुए निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हैं –

''बुत नहीं ये सिर्फ चार कौए थे काले
उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़ने वाले
उनके ढंग से उड़े, रुकें, खाएं और गायें
वे जिसको त्यौहार कहें, सब उसे मनाएं।''[2]

स्पष्टता, निर्भिकता और साहसी वृत्ति मिश्रजी के काव्य की उल्लेखनीय विशेषता रही है। यहां°इन्होंने कटु सत्य को बड़े ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। अन्याय और अत्याचार के विरोध में उन्होंने सदैव आवाज उठायी चाहे दूसरी ओर सत्ताधीश हो अथवा पूंजीपति। कोई क्या कहेगा? अथवा अब क्या होगा? इस बात की उन्होने कभी परवाह नहीं की। इससे यह निर्दिष्ट होता है कि, जब कवि स्वयं किसी समस्या से जूझता है, उसका हिस्सा बन जाता है, तब उसकी अनुभूति अतंत सटीक एवं अभिवक्ति बड़ी स्पष्ट होती है।

गणतंञ दिवस पर कवि सोचता है – विभिन्न आवश्यकताओं में बंधकर परिवार, समाज, राज, प्रजा यह समस्त व्यवस्था बनी। पहले आदमी की आदमी पर कोई सत्ता नहीं थी किंतु स्वतंञता प्राप्ति के पश्चात् आदमी कराहने लगा, हम किसी धर्म या तंञ व्यावस्था के गुलाम बन गये –

"इस तरह आदमी हजारों बरसों से गुलाम है अब
स्वतंत्रता एक नाम है अब
सबसे बड़ा धर्म तंत्र भक्ति, तंत्र के रूप से अनुरक्ति
वह चाहे जैसा वैसा करना
वह जिस ढंग से चाहे उस ढंग से भरना।।"[3]

वर्तमान प्रजातंत्र युग में समाज की दयनीय स्थिति का उद्घाटन कवि ने किया है। भ्रष्टाचारी तथा पूंजीवादी, सत्ताधरी, पीड़ित समाज जनों को भूलता जा रहा है, इसका यथातथ्य वर्णन कवि ने अपनी कविताओं में किया है। कवि ने देश की आतंकित स्थिति का चित्रण निम्नलिखित शब्दों में किया है–

"मेरे देश के जंगलों में
पंछी, हिरन, चीतल, नील गाय,
सांभर नहीं है अब
दरिंदे ही दरिंदे हैं इसमें।"[4]

मिश्र जी की काव्य अपनी जिजीविषा, सामाजिकता, उदात्तता, युगबोध, प्रखर अनुभूति, ईमानदारी एवं अभिव्यक्ति की सहजता की वजह से नेताओं से लेकर तो सर्वसाधारण जनता तक सब के हृदय पर साम्राज्य कर सका है। अतः डॉ. शिवकुमार मिश्र ने भवानी प्रसादजी के संबंध में अतंत सटीक टिप्पणी दी है ऐसा मुझे लगता है – ''भवानीप्रसाद मिश्र की कविता आस्था की कविता है, ठण्डी आस्था की कविता नहीं, वरन उस आस्था की, जो संघर्षों के बीच जीकर कवि ने प्राप्त की है। वह प्रतिबद्धता की कविता है।''[5]
जब राजनैतिक जीवन संघर्ष से गुजर रहा हो तब सामाजिक जीवन कैसे शांतिपूर्ण रह सकता है? मिश्रजी की ऐसी अनेक कविताएं°है जो तत्कालीन ग्रामीण दुर्दशा एवं वैषम्य के चित्र प्रस्तुत करती है–

"गांव, इसमें झौंपड़ी है घर नहीं है
झौंपड़ी के फटकियां हैं, दर नहीं है
धूल उड़ती है, धुएं से दम घुटा है
मानवों के साथ से मानव लुटा है।"[6]

उपरोक्त पंक्तियों में युगीन सामाजिक विपन्नता एवं उपेक्षित जीवन पदद्धति के साथ ही सर्वसामान्य जीवन का एक यथार्थ चित्र उभरकर आया है। कृषकों की कर्मठका, दीनता, निरीहता, जैसे इन पंक्तियों में जीवन्त हो उठी है। दरवाजे विहीन झोंपड़ियों में धुएं से घुटता हुआ दम मानव के शोषण का प्रतीक है। वर्तमान अवस्था में हम जिस समय और परिवेश में जी रहे हैं यह मानव जीवन की एक विडम्बना ही है कि हम सहानुभूति के साथ किसी की पीड़ा को सोचना–समझना तो दूर, उसकी ओर दृष्टिपात करना भी उचित नहीं मानते व्याक्ति समाज की इकाई है और हर स्थिति में वह समाज से जुड़ा हुआ है। युगीन आत्मकेन्द्रित, स्वार्थपूर्ण, वैयक्तिकता का विरोध करते हुए मिश्र जी लिखते हैं –

"समष्टि को जीने से
सहने से / जीता है आदमी।"[7]

मिश्र जी के अनुसार शहरी जीवन, भौतिकतावादी दृष्टिकोण ईर्ष्या, द्वेष, भ्रष्टाचार, आत्मलिप्सा और स्वार्थ आदि की वजह से मानव आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। इन सब की अभिव्यक्ति उनके काव्य में कई स्थानों पर हुई है। उनके अनुसार केवल अपनी उद्देश्यपूर्ति हेतु वर्तमान मानव इस तरह जी रहा है–

"जिन्दगी शोरगुल हो गयी है
दो पैसे से/दस पैसे तक
पहुंचने का पुल हो गयी है।"[8]

आपाधापी के इस दौर में हम जीवन मूल्यों को ही भूल गये हैं। मिश्र जी के अनुसार वर्तमान मनुष्य आज एकाकी जीवन यापन हेतु विवश है क्योंकि आज हम मानव–मूल्यों की उपेक्षा करके उन स्थितियों को अपना रहे हैं जो जीवन को सार्थक नहीं करती अपितु विनाश को आमंत्रित करती हैं। समाज का खोखलापन, व्यक्ति के मन की रूग्णता, अंतर्बाह्य का असंमजस्य, शोषण और अनाचार इन यथार्थ तथ्यों का वर्णन कवि को स्वतः ही व्यंग्यात्मक शैली की ओर ले जाता है;
भवानीप्रसाद जी की कविताओं में जीवनानुभव की व्यापकता है। उनकी कविता जीवन संघर्ष की दीप्ति से अनुप्राणित है। वे जाति, देश, धर्म एवं पंथ से ऊपर मनुष्यता को महत्व देते हुए कहते हैं–

"अगर हमने
आगे नहीं रखा हर चीज से
आदमीयता–को
तो और जो चाहें कर लें
जाति, धर्म, कौम, देशाभिमान
सब छुएंगे पशुता के छोर।"[9]

मिश्रजी युगबोध के नाम पर संकीर्ण और धूमिल दृष्टि के शिकार कभी नहीं हुए, बल्कि बंधी–बंधाई परिपाटी से दूर एक विराट पृष्ठभूमि पर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। परिवेश के प्रति जागरूक और लोक–जीवन से गहरी आसक्ति के कारण वे हर तिरस्कृत, उपेक्षित का साथ देना चाहते हैं।
श्रम का महत्त्व कविता में वे श्रम की प्रतिष्ठापना करते हुए वे उस समाज की ओर संकेत करते हैं जहाँ सदियों से जाति के नाम पर असंख्य लोक प्रताड़ित जीवन यापन कर रहे हैं–

"एक आदमी घड़ी बनाता
एक बनाता चप्पल
इसीलिए यह बड़ा और वह छोटा
इसमें क्या बल।"[10]

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ व्यापक सामाजिक जीवन के यथार्थ से सामना करती है। मिश्रजी ने अपने दैनंदिन जीवन के सुख–दुख को अपनी कविता का विषय बनाया है। दूसरे सप्तक के वक्तव्य में वे लिखते हैं– "मैंने अपनी कविताओं में प्रायः वहीं लिखा है जो मेरी ठीक पकड़ में आ गया है। दूर से कौड़ी लाने की महत्वाकांक्षा भी मैंने कभी नहीं की।''[11]
प्रस्तुत कथन से हमें यह ज्ञात होता है कि मिश्रजी मानवीय आस्था और जिजीविषा के कवि है साथ ही संघर्ष के गायक भी है। पुरुषार्थ से जी चुराना अथवा पलायनवादी मनोवृत्ति उन्हें कतई पसंद नहीं। वे जीवन में विषम परिस्थितियों का साक्षात्कार करना आवश्यक मानते हैं।
परिस्थितियों से ही मनुष्य लड़ने की प्रेरणा प्राप्त करता है। सामान्यतः आर्थिक स्थिति मनुष्य के जीवन को आधार एवं संतुलित दिशा प्रदान करती है। अमीरों के पास शोषण के शस्त्र थे। गरीब शोषण की चक्की में पिस्ते जा रहे थे, मनुष्यता पददलित और आहत होती जा रही थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी आम आदमी गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। गांधीवादी विचारों से प्रेरित मिश्रजी मशीनी संस्कृति के प्रभुत्व को अस्वीकार करते हैं। उनका मानना था औद्योगिक उत्पाद शोषण की एक प्रक्रिया है। आधुनिक मानव जिसे प्रगति मानता है, वह दूरगामी स्थितियों को समझ नहीं पा रहा है। वर्तमान तथाकथित प्रगति संबंधी कवि के विचार यों है– "यह प्रगति नहीं है, आभास है प्रगति का।"[12]
मिश्रजी के अनुसार औद्योगिकरण और वैज्ञानिक उन्नति मानव जीवन की समस्याएँ सुलझाने के माध्यम मात्र थे किंतु इससे मानव जीवन ही संवेदनाओं से रहित और यांत्रिक हो गया। मशीनों के आविष्कार से मनुष्य शक्ति गौण हो गयी। वर्तमान

मनुष्य प्रकृति का जैसा दोहन कर रहा है उससे प्रकृति का संतुलन बिगड, नित–नई समस्याएँ खडी हो रही हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान कवि ने सांस्कृतिक विघटन एवं विदेशी अंधानुकरण की बढ़ती प्रवृत्ति को तीव्रता से महसूस किया था। ग्रामों में फिर भी परस्पर सौहार्द की भावना दिख पड़ती थी, इसके विपरीत शहर में अजीब सा अजनबीपन दिखने लगा था। समाचार पत्र में जब कवि अपहरण, झूठे दावे, नरबलि, धमकियाँ, बलात्कार जैसी खबरें पढ़ता है तो उसे ऐसा प्रतीत होता है मानों मनुष्य का स्नेहशील मन, उसकी मनुष्यता शायद मर चुकी है इसीलिए ऐसे समाचारों पर मानव गर्व कर सकता है। वर्तमान स्थिति में भी पूरा देश बलात्कार जैसी समस्याओं से जल रहा है। ऐसी बिगड़ती हुई मानव संस्कृति पर कवि ने तीखा व्यंग्य किया है। मिश्र जी कविता को जीवन से पृथक् कर नहीं देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपना स्वतन्त्र मार्ग निश्चित किया। उनके सोचने और व्यक्त करने का तरीका स्पष्ट था। उनका अपना दर्शन और दृष्टिकोण था, जिस पर वे सदैव अग्रसर रहें। मेरी समझ में ऐसी राह पर चलने वाले मिश्र जीका काव्य स्वयं में और जन–मन में आगे बढ़ने की शक्ति और अदम्य विश्वास का संचार करता है। मिश्र जी के अनुसार –

"जो काम प्रेरणा देता है
वह चाहे जितना मामूली हो
ले जा सकता है हमें चाहे जहाँ
जाने की जगह, भले ही सूली हो।"[13]

मिश्र जी का आधारफलक विस्तृत है। उनका काव्य समसामयिक यथार्थ की विषय–वस्तु पर गहरी संवेदना और समझ का सशक्त हस्ताक्षर है। वे भारतीय चिंतन की निरंतरता और आस्था के कवि हैं। मानवीय विषयवस्तु उनके काव्य का मूल उत्स है। स्वयं मिश्र जी के, युगबोध के संबंध में विचार हैं कि– "कविता में वह शक्ति होनी चाहिए, जो समसामयिक स्थितियों में उलझे सामान व्यक्ति को भी सही दिशा निर्देशित कर सकें।''[14] इसीलिए वे अपने समकालीन कवियों को बेधड़क कह सकें है –

"यदि इतना सोच समझकर
बोलोगे चलोगे, कभी मन की नहीं करोगे
तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम
बंजर हो जाओगे।"[15]

इस तरह मिश्र जी के काव्य में युग, जीवन संजीवनी प्राणवायु, बेरोक–टोक लेता हुआ देखा और महसूस किया जा सकता है।

संदर्भ

1. गीतफरोश–भवानीप्रसाद मिश्र, सरला प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 5
2. त्रिकाल संधा, कविता–चार कौए उर्फ चार हौवे, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ. 9
3. गांधी पंचशती – भवानीप्रसाद मिश्र, सरला प्रकाशन, दिल्ली, पृ. ह्फ्ड़
4. सम्प्रति–भवानीप्रसाद मिश्र, किताब घर, दिल्ली, पृ. 100–101
5. भवानी भाई–प्रेमशंकर रघुवंशी, सरला प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 29
6. गीतफरोश–भवानी प्रसाद मिश्र, सरला प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 34
7. चकीत है दुख, कविता–अदेय यह सपना–भवानीप्रसाद मिश्र, सरला प्रकाशन, दिल्ली, पृ.5
8. परिवर्तन जिए, कविता–जिन्दगी–भवानीप्रसाद मिश्र, सरला प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 51
9. सम्प्रति–भवानीप्रसाद मिश्र – किताब घर, दिल्ली, पृ. 27
10. भवानीप्रसाद मिश्र के आयाम–सपंादक–केडिया, लक्ष्मण, समकालीन सृजन, कलकत्ता,पृ.20
11. दूसरा सप्तक–अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृ. 5
12. भवानीप्रसाद मिश्रः वक्तित्व और कृतित्व–गडकर, राजकुमारी, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, पृ. 9
13. त्रिकाल संधा–कविता–बाल प्रेरणा, भवानीप्रसाद मिश्र, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ.86
14. भवानीप्रसाद मिश्र का काव : वस्तु और रूप –डॉ. ताताराव सुर्वंशी, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, पृ.61
15. दूसरा सप्तक–अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृ. 5